A National, Registered & Refereed Monthly Journal : Dance
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 39-41
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782
Since March 2002

# कत्थक नृत्य और ठुमरी : एक विवेचन

*भाष्यकार पंतजलि ने भी 'नृत्य' शब्द की उत्पत्ति 'नृ' धातु से स्वीकार की है और नृत्य का अर्थ शरीर के विभिन्न अंगों के हिलने-जुलने को माना है। नृत्य के व्यापक अर्थानुसार इस शब्द का संबंध मनुष्य जाति के अतिरिक्त पशु पक्षियों में भी जोड़ा गया है। महाभाष्य के अध्याय संख्या ( 7-3-87 ) में लिखा है, 'मोर अपनी प्रियतमा को देख कर नाचता है' तथा 'प्रियां मयूरः प्रनर्ततीति।' नृत्य को प्राचीन शास्त्रों में शिल्प कहा गया। आज इसे नृत्य कला और नृत्य शैली जैसे शब्दों द्वारा संबोधित करते हैं। मुख्य तीन ललित-कलाओं के अंतर्गत संगीत में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है।*

**श्रीमती रंजना छाबड़ा**

नृत्य मानव की आंतरिक वृत्तियों को विकसित करने एवं अभिव्यक्त करने का एक साधन है। हर्ष, शोक भय आदि भावों का आविर्भाव मानव जन्म के साथ ही हुआ और उतना ही प्राचीन इतिहास नृत्य का माना जाता है। वास्तव में नृत्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक अनुपम उपहार है। दार्शनिकों के अनुसार ब्रह्मा की सृष्टि से नृत्य का आरम्भ मान लेना ही समीचीन प्रतीत होता है। मानव ही नहीं अपितु पशी-पक्षी भी नृत्य से अछूते नहीं है। वन में थिरकते मोर और जल में क्रीड़ा करती मछलियाँ भी नृत्य का आभास देती हैं। सागर की लहरों और वृक्षों के लहराने में भी नर्तन का स्वरूप झलकता है। मानो किसी सुन्दर नर्तकी की भंङ्गिमाओं के प्रदर्शन का ही आभास होता है। नृत्य के साथ सारा ब्रह्माण्ड ही धनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं।

नृत्य शब्द 'नृ' धातु से उत्पन्न प्राचीन शब्द है। वेदों में 'नृत्यमानो अमृत' ऋग्वेद (5-33-6) जिसके नृत्यमानो का अनुवाद सायनाचार्य ने 'नृत्यन्' अर्थात् नाचते हुए किया है। 'जगाम नृत्य' ऋग्वेद (10-18-3) अर्थात् नृत्य कर्म के लिए अंग संचालन है। 'नृतव' (8-30-22) जिसका पर्याय सायण में 'नृत्यन्त' अर्थात नाचते हुए किया।[1]

भाष्यकार पंतजलि ने भी 'नृत्य' शब्द की उत्पत्ति 'नृ' धातु से स्वीकार की है और नृत्य का अर्थ शरीर के विभिन्न अंगों के हिलने-जुलने को माना है। नृत्य के व्यापक अर्थानुसार इस शब्द का संबंध मनुष्य जाति के अतिरिक्त पशु पक्षियों में भी जोड़ा गया है। महाभाष्य के अध्याय संख्या (7-3-87) में लिखा है, 'मोर अपनी प्रियतमा को देख कर नाचता है' तथा 'प्रियां मयूरः प्रनर्ततीति।' नृत्य को प्राचीन शास्त्रों में शिल्प कहा गया। आज इसे नृत्य कला और नृत्य शैली जैसे शब्दों द्वारा संबोधित करते हैं। मुख्य तीन ललित-कलाओं के अंतर्गत संगीत में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

नृत्य के लिए ''अंग्रेजी भाषा में 'डांस' शब्द प्रयुक्त होता है। ''शब्दकोश में 'डांस' शरीर तथा शरीर के अंगों को सवत् घुमाते और गति देते हुए साधारणतः संगीत की संगति में एक लयबद्ध उछलना तथा कदम बढ़ाना और पगो की एक निश्चित अनुक्रमण अथवा व्यवस्था और तालबद्ध गति है।''[2] नृत्य गात्र-विक्षेप तथा पद संचालन की क्रमबद्ध अथवा तालबद्ध क्रिया है।

प्राचीन आचार्यों ने नाट्य को नृत्य का उत्स माना है-

नृत्त की उत्पत्ति प्राकृतिक रूप में मानव जन्म से पूर्व हो चुकी थी। नृत्य की प्रेरणा मानव ने प्रकृति के विशाल सृजनात्मक प्रांगण से, बुलबुल के मधुर संगीत, इस की गति, सर्प की मोहक वक्र गति से, झरने की कलकल गति से, पुष्पों एवं भ्रमरों की केली से, मानव ने मधुर गीत व नृत्य की शिक्षा ली। जिससे मानव हृदय आन्तरिक सौन्दर्य और आनन्द से परिपूर्ण हुआ। भाषा के अभाव में भावनाओं की अभिव्यक्ति का सहारा नृत्य था। प्रकृति को नृत्यमय चरितार्थ करते हुए नंदिकेश्वर के अनुसार-

'आगिंक भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम।

आहार्य चन्द्रतारादि तं नभः सात्विक शिवम्। अर्थात् उस सात्विक शिव को नमस्कार है जिनका आंगिक संसार वाचिक समस्त भाषाएँ और आहार्य चन्द्र तारागण है।''[3]

शिव व पार्वती से नृत्य की उत्पत्ति अनेक विद्वानों ने मानी है। शिव पुराण में शिव को नृत्य कला का प्रवर्तक कहा गया है। शिव ही आदि नट हैं और उनकी नाट्य महिमा के प्रति श्रद्ध-प्रदर्शन के कारण ही उन्हें नटराज कहा जाता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही उनकी नृत्यशाला माना जाता है। नृत्य उत्पत्ति के संबंध में 'कोहल' के मत को अभिनवगुप्त ने उद्धृत किया है कि बहुत समय पूर्व शिव के नृत्य पर भाव विभोर होकर नारद ने एक गीत गाया जो त्रिपुरासुर के संहार के कथानक पर आधारित था। गीत के भावों से शिव भावुक हुए और उन्होंने उस गीत का अभिनीत किया। तत्पश्चात् शिव ने अपने शिष्य तण्डु को नाट्य में बताए गए अभिनय से ताण्डव नृत्य को संयुक्त करने का निर्देश दिया। 'देवताओं के अनुरोध से ब्रह्मा ने नाट्य की उत्पत्ति की अतः फिर इन दोनों कलाओं के सहयोग से जो निकला वह नृत्य हुआ। उक्त कथा को देखने से स्पष्ट हो

*व्याख्याता, ए.पी.जे.कॉलेज ऑफ फाईन आर्ट्स, जालंधर ( पंजाब )*

जाता है कि नृत्य के जन्म दाता शंकर, नाट्य के ब्रह्मा तथा नृत्य के जन्मदाता भरतमुनि हुए।''(4)

भगवान शंकर की भाँति कृष्ण के नृत्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। श्री कृष्ण व उनकी गोपिकाओं की 'रास' मण्डित छवियों में नृत्य का समृद्ध रूप देखने को मिलता है। श्री मदभागवद् की टीका में श्रीधरस्वामी ने ''अनेक नर्तकियों द्वारा किये गये नृत्य को रास कहा है। रासो नाम बहुनर्तकी युक्तः नृत्य विशेष, अतः परम रस की अनुभूति स्वरूप ही कृष्ण भगवान ने जो विशेष नृत्य किया वह रास कहलाया। रास का उत्स रस, और संगीत का स्रोत है नाथ। दोनों ही कृष्ण रूप हैं। रास भगवान कृष्ण की एक रसमयी विशिष्ट लीला है। राम शब्द रस से ही बना है, उसके कर्ता श्री कृष्ण स्वयं रसरुप है।''(5) कुछ विद्वान कत्थक को नटवरी नृत्य कहते हैं और कत्थक नृत्य का जनक श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित वह रास नृत्य ही है। जहाँ शिव नृत्य का जन्मदाता होने से नटरास और रास का कृष्ण द्वारा जन्म होने से उनको नटवर कहा जाता है। अतः शिव पार्वती को नृत्य का तथा कृष्ण को रास का प्रवर्तक माना जाता है। कृष्ण के रास से ही सम्भवतः कत्थक नृत्य की उत्पत्ति मानी जाती है। आधुनिक भारत में प्रचलित शास्त्रीय नृत्य शैलियों में कत्थक नृत्य का प्रमुख स्थान है। कत्थक नृत्य पूर्ण रूप से कथक शब्द पर ही अवलम्बित है।

कत्थक शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में हुआ है। कत्थक एक जाति सूचक संज्ञा है जो कि गायक वादक तथा नर्तकों की जाति विशेष के लिए व्यवहृत होता है । ''कत्थक संस्कृत व्याकरण की 'दशमगण' की 'कथ्' धातु से (कथ + कर्तरिव्वुल) विनिर्मित एक कृदन्त शब्द है, इसकी व्युत्पत्ति- 'कथयति यः स कथकः' अर्थात् जो कथन करे वह कत्थक है।''(6) शब्दकल्पद्रुम में इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार हैः

कथयाति यः। (कथ कर्तरिव्वुल) वक्ता। कथोपर्जीवी। नाटक वर्णनकर्ता। तर्त्पय्य्यायः। एकनटः 2 कथाप्राणः 3। इति शब्दरतनावली।''(7)

कत्थक शब्द कथक, कथिक, कथिको, कहुब आदि अनेक रूपों में प्राप्त होता है। पाली एवं नेपाली शब्द-कोष में कथिको का अर्थ व्याख्याता, उपदेशक अथवा वर्णन करने वाला है। कल्पसूत्रादि जैन ग्रंथों में कत्थक के स्थान पर कहुब शब्द मिलता है। यह अर्थ परम्परा कत्थक शब्द को मुख्यतः तीन विशेषताओं से सम्बन्धित करती है- कथा, अभिनय और उपदेश। इनके संयुक्त रूप में कत्थक शब्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रकट होता है। कत्थक वह व्यक्ति विशेष है जो लोकापदेश के लिए अभिनय के माध्यम से कथा की प्रस्तुति करे।

कत्थक शब्द का प्रयोग महाभारत में दृष्टिगोचर होता है, ब्रह्म महापुराण में अभिनेता गायक एवं नर्तकों के लिए कत्थक शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी अर्थ में अग्निपुराण एवं विष्णु पुराण में यह शब्द प्राप्य है। अतः जीवनकाल में कथावाचको द्वारा मंदिरों में पौराणिक कथाएँ हुआ करती थी कथा के बाद जब कीर्तन होता था तो उसमें भरत या नट लोग नृत्य करते थे। बाद में इन नटों ने स्वयं कथा कह कर नृत्य करना प्रारम्भ किया और यह लोग कथक या कत्थक कहलाये। ये समाज में भगवान कृष्ण की लीलाओं का नृत्य-प्रधान नाटक या स्वाँग किया करते थे और उन्हें राज दरबारों में श्रमण, बनवासी, बंदीजन व कलावन्तो के साथ बिठाया जाता था। अतः धार्मिक भावनाओं को समाहित किये हुए कत्थक शैली धीरे-धीरे मुगल दरबारों की ओर बढ़ी।

मुगल काल में हिन्दू मन्दिरों की नर्तकियां राज नर्तकियों में परिवर्तित हुई और राजाओं के आश्रय में पलने लगी और कत्थक नृत्य शैली का रूप मुगल काल ही में निखरा परन्तु उत्तर भारत में इस शैली में मुस्लिम सभ्यता का गहन प्रभाव पड़ा। नृत्य में प्रयुक्त परिभाषिक शब्द जैसे स्तुति ने सालामी का रूप, भजन ने ग़ज़ल का रूप ले लिया। जहाँ इसके स्वरूप, तकनीक, वेशभूषा आदि में परिवर्तन हुआ परन्तु राधा कृष्ण के संयोग श्रृंगार के गीत तथा भाव ज्यों के त्यों ही रहे। नृत्य में प्रेम भाव मुगलों की संस्कृति के मिश्रण का प्रतिफल था। ध्रपद, ध्मार, होरी आदि के स्थान पर ख्याल गायकी अथवा कल्पना का महत्व बढ़ गया। प्रेम की प्रधानता तथा श्रृंगारिकता से नृत्य में एक नया मोड़ आया। लयात्मक चमत्कारिता इस अवधि में नृत्य की एक पहचान बन गई थी। रसात्मकता और सूफियत के पुट से ख्याल शैली को लोकप्रियता मिली साथही इसके प्रवेश से नृत्य में रोचकता बढ़ी। मुगल काल के नवाब आसुफउद्दौला के समय से ही कत्थक नृत्य के घरानों की नींव पड़ी। ईश्वरी प्रसाद जी व उनकी वंशावली ने महान् योगदान दिये वे कत्थक नृत्य के पुनरुद्धारक सिद्ध हुए और लखनऊ घराने के जन्मदाता माने गए। उनके दरबार और शासनकाल में पल रहा कत्थिक नृत्य नवाब वाजिल अली शाह के प्रश्रय में अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुँचा। इस युग में भाँड और नक्काल भी कत्थक से जुड़ गए। अतः मुगल काल के अन्तिम चरण में कत्थक नृत्य में एक क्रांतिकारी रूप धारण कर एक सुनिश्चित कत्थक शैली को तैयार किया यही शैली आज कत्थक नृत्य का आधार है।

कत्थक नृत्यों के ''तीनों अंगों (नाट्य, नृत्त, नृत्य) में से मृत्य अंग नाट्य और नृत्त का सम्मिश्रित रूप है। जिसके अंतर्गत गीत तथा कथा को मुख्य अभिनय हस्त मुद्राओं तथा शरीर की सांकेतिक स्थितियों को लयात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। 'नाट्य' वाक्यार्थाभिनय है, 'नृत्य' पदार्थाभिनयात्म। वाक्यार्थ 'रस' है पदार्थ 'भाव'- 'नाट्य रसाश्रय' और 'नृत्य भावाश्रय।'(8)

पदार्थ विभावादि (नायक नायिका) है।'' उनके द्वारा अलग-अलग अभिनय पदार्थाभिनय है और उसी से रस निष्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण वाक्य के तात्पर्यानुसार अभिनय करना ही नृत्य की विकासात्मक श्रृंखला है। अतः यह ताल लय के साथ मुख्य रूप से ताण्डकत्व, वैविध्य, अलंकरणात्मकता तथा चमत्कारिता का सृजन करता है। आचार्य नन्दिकेश्वर के अनुसार :

***''नृत्यगीताभिनयं भावतालयुंत भवेत,***
***आस्येनालम्बयेदगीतं हस्तेयार्थ प्रदर्येत,***
***चक्षुभर्या दर्शमे भाव पादाम्यां तालल्यचारेत।''***

अर्थात् नृत्य का मुख्य आधार गीत है। गीत में सन्निहित भावों ककी विभिन्न अंग उपागों द्वारा अभिव्यक्ति नृत्य है। आँखों से भाव प्रदर्शन करना, पैरों से तालानुसार ठोका देना चाहिए।''(9) भारत वर्ष में जिस काल में जो-जी भी गीत शैली प्रचार में रही वही उस युग की नृत्य का आधार बनती गई। नाट्यशास्त्र से विविध होता है कि इस युग में वर्धमान, आसारित आदि प्रचलित गीतों, संस्कृत के पदों अष्टपदियों, प्रबंधों व अन्य प्रकार के गीतो पर नृत्य होता था। इसके बाद चांचर, ध्मार, होरी, चैती, कजरी, सवैये, ऋतु गीतों के साथसाथ ब्रज-भाषा के कवित तात्कालीन नृत्य के आधार बने। परन्तु लगभग 200 वर्ष पूर्व से कत्थक नृत्य का मूलाधार ठुमरी नामक गीत प्रकार रहाहै। कत्थक शैली में रसोत्पत्ति के उद्देश्य से इसके अंतर्गत आने वाले भाव-सौन्दर्य के लिए ठुमरी की रचना विशेष रूप से की गई। जैसा की ठुमरी शब्द की उत्पत्ति ठुमकने से ही है। अतः इस गायन विद्या का निर्माण कत्थक के लिए हुआ। 17-18वीं शताब्दी तक के अनेक ग्रंथों में वेश्याओं द्वारा ठुमरी गाकर नृत्याभिनय करने की चर्चा है। नवाब वाजित अली शाह के शासनकाल में धारण किया। ठुमरी के पूर्व के हल्के फुल्के तथा बाजारू रूप को सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ आवरण पहनाया। उन्होंने स्वयं 'अख्तर' उपनामसे अनेको ठुमरियां रची जो आज भी नृत्य के साथ गाई जाती है। ठाकुर जय देव सिंह के

अनुसार ''ठुमरी रूपक संगीत का एक देसी प्रारूप है। श्री कृष्ण के पौत्र सभ्य और प्रधुम्न ने ब्रजनाभपुर में असुरों के रंग-मंच पर इसका प्रदर्शन किया था। कालीदास के 'मालविकागनमित्रम्' नाटक में मालविका द्वारा इसका प्रदर्शन दिखाई देता है। इसमें स्वराश्रित वाचिक और अंगिक दोनों प्रकार के अभिन होते थे।''(10)

कत्थक नृत्य में अभिनय को प्रस्तुत करने के लिए विशेष रूप से गीत के निहित बोल अथवा उसमें निहित भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। अतः ठुमरी प्रकृति से चपल भाव प्रवीण और सरस होने से नृत्य का आधार बनी। इसके शब्द, व्युत्पत्ति अर्थ और विकास सम्बन्धि विद्वानों के मत हैं-

'ठुमरी' संस्कृत के 'स्तुम्भ' धातु से विकसित 'ठुम' के साथ मत्वर्थीय 'र' प्रत्यय के स्त्रीलिंग रूप 'री' (र + ई) के संयोग से बना। 'ठुमरी' सान्धयमान तद्भव श्रेणी का शब्द है जिसका अर्थ नृत्य के साथ गाई जाने वाली गेय रचना होता है। 'ठुमरी शब्द के दो अंश 'ठुम' और 'री' इसमें 'ठुम' ठुमकने का धोतकहै और 'री' अतरंग सखी से अपने मन की बात कहने का। इसी संदर्भ में ठुमरी शब्द ठुम और री के संयोग से बना है 'ठुम' शब्द 'ठुमकत चाल' अर्थात् 'राधाजी की चाल' और री शब्द 'रिझावत' अर्थात भगवान कृष्ण के मन को रिझाने की ओर इंगित करता है। अतः पूरी तरह व्युत्पितिगम्य अर्थ के अनुसार 'ठुमरी' शब्द एक ऐसे लघु आकार के गीतों की ओर ईशारा करता है जो नृत्य के सुकुमार भावों से सम्बन्धित हो।''(11)

प्रसिद्ध ठुमरी गायक स्व. गिरजा शंकर चक्रवर्ती भी ''ठुमक और रिझाना से 'ठुमरी' शब्द को व्युत्पत्ति मानते हैं। 'ठुमक' लय का और 'रिझाना' अर्थ भाव का द्योतक होने के कारण ठुमरी शब्द में लयकारी और भावाभिव्यंजना दोनों को व्यक्त करता है। 'ठुम' और 'री' के योग से इस शब्द की व्युत्पत्ति हुआ।''(12) ठुम, ठुमक शब्दों के अन्तर्गत तीन गुण परिलक्षित होते हैं- (1) हर्षोत्फुल्लता अथवा उमंग (2) थोड़े-थोड़े समय के अंतर पर रुकावट (3) आद्यातमूलक गुंजनपरक ध्वन्यात्मकता अर्थात् 'ठम' अथवा 'ठुम' का अर्थ ''उमंग सहित थोड़े-थोड़े समय के अंतर पर होने वाले आधातमूलक गुंजनपरक ध्वनि। इसलएि नृत्य क्रिया में थोड़े-थोड़े समय के अन्दर पर लययुक्त पदाद्यात से बजने वाले पैरों के घुंघरू, नूपुर, पायल इत्यादि की गुंजनात्मक ध्वनि के कारण ही कालान्तर में ठम, ठमक, ठुम, ठुमक इत्यादि शब्द नृत्यावाची हो गए और नृत्य तथा उससे सम्बन्धित लयात्मक चाल के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा, जैसे 'तुलसीदास' का यह पद 'ठुमक चलत राम चन्द्र बाजत पैंजनियाँ।' रास के असंख्य पदों में भी ठुमक चलत अथवा ठुम ठुम चाल इत्यादि उल्लेख मिलते हैं।''(13) और ठुमक शब्द युक्त होने के कारण ही ब्रज-प्रदेश में नटनियों द्वारा किए जाने वाले एक नृत्य को ठुमका नाच कहा जाता है।

ठुमरी सन्निवेश ने कत्थक के अभिव्यंजनात्मक पक्ष अर्थात् 'नृत्य अंग' को विस्तार से निर्वाह करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पदार्थाभिनय को शास्त्रों में 'नृत्य' का प्रधान गुण कहा जाता है। बोल 'ठुमरी' का प्राण है। ठुमरियों के 'बोल बनाब' और 'बोल बांट' पर आधारित भेद भी इसी तथ्य के परिचायक हैं। ठुमरी गानके साथ उसके बोलों का अर्थ भाव नृत्य में पदार्थाभिनय कत्थक की अनयतम विशेषता है। ये दो तरह के होते हैं-

**(1)** बोल बनाव की ठुमरी अथवा बोल आलाप विशिष्ठ ठुमरी।

**(2)** बंदिशी ठुमरी या बोल-बाँट अथवा लय प्रधान ठुमरी।

प्रथम प्रकार में ठुमरी प्रस्तुतीकरण बैठकर किया जाता है जबकि द्वितीय प्रकार में खड़े होकर भाव प्रदर्शन में नृत्य भी सम्मिलित रहता है। बंदिशी ठुमरी नृत्य के लिए विशेष रूप से अनुकूल है। 'बंदिशी ठुमरी' नृत्य में मध्य लय या द्रुत लय में गाई जाती है। जबकि बोल बनाव की ठुमरी नृत्य केसाथ धीमी लय में प्रस्तुत की जाती है। इसमें अभिनय निरंतर रहता है। श्री शंभू महाराज जी, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी ठुमरी प्रस्तुतिकरण में अभिनय सम्पूर्ण थे। अतः इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि कत्थक नृत्य में ठुमरी श्रृंगार रस प्रधान नायिका भेद पर आधारित है, यह ललित, मर्मस्पर्शील लोकप्रिय रागों जैसे भैरवी, पीलू, खमाज काफी, तिलंग आदि में निबद्ध रहती है। लखन घराने के वाजिदअली शाह के दरबारी नर्तक दुर्गाप्रसाद जी के पुत्र बिन्दादीन जी का नाम ठुमरी का पर्याय बन चुका है और नृत्य में ठुमरी रचना का कार्य इन्होंने आरम्भ किया। इनकी ठुमरियां में श्रृंगार रस को विशिष्ट ढंग और नाजुक भाव को नफासकसे व्यक्त करते हुए संयोग और विनियोग दोनों की सपेक्षित भावनाएँ सम्मिलित होती हैं और साथ ही वीर, करुण तथा शांत रस का भी सुंदर सम्मिश्रण हुआ और इन्हीं विशेषताओं के कारण ही ठुमरी कत्थक नृत्य में भाव प्रदर्शन के मुख्य आधार के रूप में समस्त देश में पल्लवित हुई। अतः नृत्याचार्य बिन्दादीन जी ने 'ठुमरी' भाव प्रदर्शन की विधियों को सात सोपान के रूप में पारम्परिक रूप दिया। जिनके द्वारा अभिनय भावस्वरूप क्रमशः खिलता जाता है।

निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि ठुमरी एक श्रृंगार रस प्रधान पदार्थाभिनयी, भावव्यंजक ललित राय विद्या है, जिसमें नृत्य के भावों को विभिन्न अंग उपांङ्गों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। ठुमरी विशेष रूप से कत्थक नृत्य के लिए रची गई जो उपरोक्त वर्णित निजी विशेषताओं से युक्त कत्थक शैली के लखनऊ घराने के नृत्य के भाव प्रदर्शन का मूलाधार है। यह एक लोकप्रिय गीत भेद के रूप में प्राचीन समय से नृत्य के साथ प्रयुक्त होती रही है। जिसके फलस्वरूप नृत्य की गतियों में प्रभाव उत्पन्न होता था। आगे चलकर ऐसी ठुमरियाँ रची गई जो पूर्णतः नृत्य की गतियों के साथ गाई जा सकें जिससे उनके भावनात्मक पक्ष का स्पष्टीकरण हो सके। इस प्रकार ठुमरी और कथक नृत्य का अन्योन्याश्रित हुए। ठुमरी रचनाकार बिन्दादीन जी कि ठुमरियाँ जिन्हें कत्थक नृत्य में विभिन्न मुद्राओं और हाव-भाव द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जैसे- 'काहे को मेरे घर आए हो', में खण्डिता नायिका 'सब बन ठन आई श्याम प्यारी' में वास्क सच्चा नायिका 'का से खेलूँ मैं पिया घर नाहीं' में प्रोषित पतिका नायिका की कलात्मक गतियों एवं चालों के साथ विभिन्न अंगों के अभिनय द्वारा दिखाया जाता है।

***सन्दर्भ :***


*(1) सरस्वती, महर्षि दयानन्द : ऋग्वेद भाषाभाष्य, पृ. 568. (2) एफ.जी.एण्ड डब्ल्यू. एच. फॉलर : ओक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 22-23. (3) आचार्य नन्दिकेश्वर : भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, श. 1, पृ. 191. (4) गुरु विक्रम सिंह नटवरी : कत्थक नृत्य, पृ. 5. (5) गुप्ता, भारती : कत्थक और अध्यात्म, पृ. 36. (6) आप्टे, वी.एस. : दि स्टूडैंट संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 130. (7) राजाराधाकान्तदेव : शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय काण्डम पृ.17. (8) त्रिपाठी, राधा बल्लभ : नाट्य शास्त्रविश्वकोश, पृ. 140. (9) आ. नन्दिकेश्वर : भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, श. 35-36, पृ. 199. (10) कारवाल, श्रीमती लीला : ठुमरी संग्रह, पृ. 4. (11) आचार्य चन्द्रशेखर पंत : ठुमरी सम्मेलन पत्रिका, पृ. 40. (12) देव, कैलाश चन्द्र ब्रहस्पति : ठुमरी में सनातन सांगीतिक तत्व, सम्मेलन पत्रिका, पृ. 1. (13) शुक्ल, डॉ. शत्रुघ्न : ठुमरी की उत्पत्ति और शैलियाँ, पृ. 8-9.*


❁❁